ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 233-235
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

कृष्ण साहित्य और राधा तत्व

डॉ0 राम अधार सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, एस0 एम0 कालेज चन्दौसी– सम्भल, (उ0प्र0), भारत

Received- 03.03.2022, Revised- 09.03.2022, Accepted - 11.03.2022 E-mail: yramadhar64@gmail.com

सारांशः – ***अनयाऽऽराधितो नूनम् से परिकल्पित राधातत्त्व श्रीकृष्ण की आहलादिनी शक्ति हैं। भक्ति की सगुणोपासना में वृन्दावन की अधीश्वरी राधा का उल्लेख अनेक ग्रन्थों में हुआ है। भास के नाटक बालचरित, गाथा सप्तशती, तमिल और गुजराती साहित्य में राधा तत्त्व का उल्लेख है। पुराणों में भी राधा की उपस्थिति मिलती है। भक्ति के आचार्यो के साथ हिन्दी कृष्ण साहित्य में राधा चरित का दृढ़ आधार उपलब्ध है। भक्ति दर्शन और लोक की चेतना राधा तत्त्व की व्याप्ति से अभिभूत है। लोक कलाएँ भी राधा तत्त्व से स्पन्दित हुयी हैं।***

कुंजीभूत शब्द– परिकल्पित, आहलादिनी शक्ति, सगुणोपासना, अधीश्वरी, बालचरित, गाथा सप्तशती, अभिभूत।

भारतीय संस्कृति के दो प्रधान महानायक राम और कृष्ण सगुणोपासक साधकों के अवलम्ब रहे हैं। ईसा की चार–पाँच सदी पूर्व उदित भागवत् धर्म और उसके आराध्य कृष्ण का उल्लेख महाभारत में विस्तारपूर्वक उपलब्ध है। भागवत् धर्म का पुनर्गठन ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ जिसके फलस्वरूप यूनान देश के निवासी हेलियोडोरस ने अपने को 'भागवत्' कहने में गौरव का अनुभव किया और अपने गरुड़स्तम्भ में 'वासुदेव' के रुप में विष्णु का उल्लेख किया। गुप्तकालीन अभिलेखों में भी विष्णु के 'वासुदेव' 'नारायण' आदि नामों का उल्लेख हुआ। विष्णु और वासुदेव की एकता स्थापित करने वाले भक्तिसम्प्रदायों में भागवत् सम्प्रदाय के बाद सात्वत धर्म का स्थान माना जाता है। वासुदेव को ही इसका प्रवर्त्तक माना जाता है। कहीं–कहीं सात्वत पर्याय के रुप में भी उपलब्ध होता है। सात्वत के बाद पांचरात्र धर्म अधिक व्यापक शास्त्रीय आधार लेकर प्रसरित हुआ। 'परमतत्त्व', 'मुक्ति', 'भुक्ति','योग' तथा 'विषय' (संसार) का समवेत ग्रहण पांचरात्र कहलाया।

शंकराचार्य प्रभृति विद्वानों ने इसकी प्रतिष्ठा की। क्रमशः विकसित इस वैष्णव भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करने में मुनिवर शाण्डिल्य और देवर्षि नारद के भक्ति सूत्रों का प्रमुख स्थान है। शाण्डिल्य ने मौलिक स्थापना करते हुए भक्ति मार्ग को द्विजेतरों के लिए उन्मुक्त कर दिया। 'परा' और 'अपरा' नामक भक्ति के दो भेद शाण्डिल्य सूत्र में उपलब्ध हैं। नारदीय भक्ति सूत्र में हार्दिक पक्ष की प्रधानता और प्रेम पर आश्रित होने के कारण इसे प्रेमा भक्ति की संज्ञा दी जाती है। दक्षिण भारत के अलवार संतों की भक्ति पद्धति और नारदीय भक्ति में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है।

नारदभक्ति सूत्र में भक्ति को 'सा त्वमस्मिन् परम प्रेम रूपा अमृत स्वरूपा च' बताया गया। भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' की स्थिति में आ जाता है–

यत्प्राप्य न किचित् वाछति, न शोचति, न द्वैष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। यत् ज्ञात्वा मन्त्रो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मरामो भवति।' स्थिर मन की प्राप्ति ही इस भक्ति की उपलब्धि है। यहाँ प्रेम कामना की
परिधि से परे हो जाता है और मन का निरोध होते ही प्रेम का उदय हो जाता है–'सा न काम्यमाना निरोधात्तु लोकवेद व्यापार न्यास से अलग इस अमृत तत्त्व की उपलब्धि के पश्चात् कुछ भी काम्य नहीं रह जाता।
'तदर्पिताखिलचारता तदविस्मरणे परमव्याकुलतेति 'च' वैसी ही है जैसे ब्रज की गोपियों की अस्त्येवमेवम्। यथा ब्रजगोपिकानाम।।

ब्रज की गोपियों जैसी दुर्लभ भक्ति ईश्वरीय अहैतुकी कृपा से ही संभव है – लभ्येतेऽपि तत्कृपयैव। वह साध्य और साधन दोनों ही है। – तदेव साध्यता, तदेव साध्यताम्। यहाँ पहुँच कर प्रेमी और प्रेमास्पद का द्वैध समाप्त हो जाता है। ब्रज की गोपियों की कृष्ण में तद्रुपता इसी अभेदता को स्थापित करती है –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खङ्खनार्भ सदितोक्षण मार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्याः ब्रजास्त्रियः उरुक्रमचिन्तदानाः।।
श्रीमद्भागवतद्गीता (10/15)

जो गौओं को दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय दही विलोड़ते समय, आँगन लीपते समय, बच्चों को पालने मे सुलाते समय, रोते हुए बच्चों को लोरी देते समय, घरों में जल छिड़कते समय और झाड़ू देने आदि कार्यों को करते समय प्रेमपूर्ण चित्त से आँखों में आँसू भरकर गद्गद् वाणी से श्रीकृष्ण लीला का ही गान करती हैं, इस प्रकार सदा कृष्ण में ही चित्त लगाये रखने वाली वे ब्रज की गोपियाँ धन्य हैं।

ब्रज की भूमि श्रीकृष्ण के जन्म लेने के कारण ही गौरवान्वित हुयी और यहीं श्री का शाश्वत निवास है। भागवत्कार लिखते हैं–**"जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।"**[1]

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

परात्पर पूर्णब्रह्म तत्त्व के तीन रुप ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् 'ब्रह्मेति, परमात्मेति, भगवानिति शब्द्यते (श्रीमद्भागवत्) तीनों में ही रसस्वरुपता विद्यमान है। परलीलाभेद से तीनों में भेद है। ब्रह्म रसस्वरूप है, पर उस निर्विशेष, निर्धर्म, निष्क्रिय, निर्गुण, निराकार तत्त्व में शक्ति का प्राकट्य नहीं है। परमात्मा में सगुण एवं निराकार दोनों रुप होने से शक्ति का आंशिक प्रकाश है, वह साक्षी है, द्रष्टा है, परन्तु रसिक नहीं है। षड्ऐश्वर्यपूर्ण, पूर्णशक्तिविकसित भगवत् स्वरूप में शक्ति तत्त्व का विकास होने के कारण भागवत् धर्म के जितने स्वरूप हैं, सभी रसरुप होने के कारण रसिक भी हैं, परन्तु सभी (तत्त्वतः अभिन्न) भगवतस्वरूपों में सभी रसों का एक साथ पूर्ण प्रकाश नहीं होता, सम्पूर्ण रसलीला विलासमण्डित केवल श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृत मूर्ति हैं। अतएव श्रीकृष्ण ही 'रसिकेश्वर' हैं। इन रसिकशेखर श्रीकृष्ण का परम रस जिसके द्वारा आस्वादित होता है और श्रीकृष्ण जिस आह्लादिनी शक्ति के रसास्वादन के लिए स्वयं लालायित रहते हैं वही मादनाख्य महाशक्ति श्री राधा जी हैं।

'सूर और उनका साहित्य' ग्रन्थ के लेखक डॉ0 हरवंशलाल शर्मा का मानना है कि ''भागवत में स्पष्ट रुप से राधा का अभाव है इसलिए राधा के विकास पर विचार करना आवश्यक है।''[2] उनका मानना है कि रासप्रसंग में एक गोपी विशेष का उल्लेख है जिसके साथ कृष्ण घूमते एकान्तक्रीड़ा करते हैं। 'अनयाराधितो नूनम' वाक्य से राधा की कल्पना की गयी।''[3] पं0 बालचन्द्र शास्त्री इस धारणा से सहमत न होते हुए श्रीमद् भागवत् के द्वितीय स्कन्ध में चतुर्थ अध्याय के श्लोक संख्या 14 की व्याख्या निम्नवत् करते हैं–

''नमो नमस्तेऽस्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्त साम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।।''

सात्वत भक्तों के पालक, कुयोगियों के लिए दुर्ज्ञेय प्रभु को हम नमस्कार करते हैं। अहा! वे भगवान् कैसे हैं? स्वधामनि–वृन्दावन में, राधसा–श्री राधा के साथ, रंस्यते–क्रीड़ा करने वाले हैं। राधा कैसी है– जिन्होंने समानता और आधिक्य को निरस्त कर दिया है, अर्थात् जिनसे बढ़कर तो दूर, कोई समानता करने वाला भी नहीं हैं। राध 'धातु' से राधा शब्द बनता है, इसी से राधस् भी बना है। इस सम्बन्ध में पुराणों का यह वाक्य प्रसिद्ध ही है–

''काचिद्देवताभ्यामधिका कुतः अनेक कोटिब्रह्माण्डपतिर्यस्याः वशो हरिः''

अर्थात्, अनेक करोड़ ब्रह्माण्डों के पति श्रीकृष्ण तक जिनके वश में हैं, उन राधा से बढ़कर या उनके समान कौन देवता है।[4]

श्रीमद्भागवतमहापुराण प्रथम खण्ड–गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित ग्रन्थ में इस श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार दिया गया है– ''जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करने वाले जिनकी छाया भी नहीं छू सकते, जिनके समान किसी का ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्य से मुक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाम में विहार करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बार–बार नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या भेद से राधा के महत्त्व प्रतिपादन का प्रयास रसिकेश्वर श्रीकृष्ण के चरित में रुचि रखने वालों में उपलब्ध होता रहा है। इससे राधा के रूप विस्तार में नितनवीनता की वृद्धि होती रही। संस्कृतनाटककार भास द्वारा रचित 'बालचरित' नाटक में गोपियों का चर्चा और उनके रूपसौन्दर्य का वर्णन उपलब्ध होता है। भास का समय विद्वान् लोग ईसा पूर्व चतुर्थ शती से लेकर ईसा की तृतीय शती तक मानते हैं। इस प्रकार यह रचना 1700–2300 वर्ष प्राचीन सिद्ध होती है।

ईसा की प्रथम शती में प्रतिष्ठानपुर का राजा शालिवाहन (हाल), जिसने करोड़ों प्राकृतगाथाओं में से कुछ को चुनकर 'गाहासत्तसई' (गाथा सप्तशती) नाम का सरस संग्रह बनाया, ने राधा का उल्लेख इस प्रकार किया है –

'अज्जवि बालो दामो अरोत्ति इअ जप्पिअइ जसो जसोआए। कण्हमुह–पोसिअच्छं निनुअं हसिअं बअबहूहिं।
उक्त श्लोक संस्कृत रूप में –

अद्यापि बालो दामोदरः इति इह जल्प्यते यशोदया।
कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं व्रजवधूभिः।।
गाथा शप्तसती में एक और श्लोक है–
मुहं मारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआए अवणेत्तो।
एदाणं बल्लवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरिस।।
जिसका संस्कृत रूपान्तरण है –
मुखमारुतेन त्वं कृष्ण राधिकाया अपनयन्।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि।।

राधा का अनाम रुप अत्यन्त प्राचीन है और इसकी परंपरा उसी रुप में कृष्ण भक्ति साहित्य में उपलब्ध होती है। तमिल

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

के अलवार भक्ति साहित्य में (जिसका समय पाँचवीं से नौवीं सदी माना जाता है) कृष्ण की प्रिया के रुप में एक रसमूर्ति गोपी की चर्चा है, जिसको श्रीवैष्णवों के रसग्रंथो में नीलदेवी तथा तमिल में 'नप्पिनैप्पिणाई' कहा जाता है जो राधा की प्रतिमूर्ति प्रतीत होती है। मध्यकालीन गुजराती कृष्ण साहित्य में भी 'राधा' नामक एक विशेष गोपी की चर्चा है और यह गोपी भी राधा का ही अन्य रुप है। 18 वीं सदी में कश्मीर में दीनानाथ नामक एक भक्त कवि ने कश्मीरी भाषा में 'श्रीकृष्णावतार लीला' की रचना की जिसमें कृष्ण प्रिया के रुप में एक गोपी विशेष का उल्लेख है, परन्तु 'राधा' के नाम की चर्चा की नहीं है। बल्लभाचार्य ने भी अपने दो ग्रन्थों 'परिवृढाष्टक' और 'मधुराष्टक' में गोपी विशेष के रुप में राधा की चर्चा है। वस्तुतः पौराणिक साहित्य की अनाम राधा ही कालान्तर में राधा के नाम से लोकाविश्रुत हुयी।

वायुपुराण, पद्मपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त्ततपुराण में राधा को शक्तिरूपा माना गया। आह्लादिनीशक्ति' और भावलोक की अधिष्ठात्री देवी राधा श्रीकृष्ण की विलास सखी है। वायु पुराण के अनुसार गोलोकवासी श्रीकृष्ण परमपुरूष और परात्पर ब्रह्म है, तो उनकी लीलासखी राधा पराशक्ति है। 'पद्मपुराण' में श्रीकृष्ण के क्रीड़ा स्थल गोकुल को गोलोक बताया गया है और उसकी आध्यात्मिक व्याख्या भी की गयी है। नित्यरासस्थल वृंदावन को गोलोक से भी श्रेष्ठ कहा गया है और वह राधास्वामी का निवास स्थल है। यहाँ स्पष्ट कथन है कि राधा और कृष्ण ही आद्य प्रकृति–पुरूष हैं। राधाकृष्ण के इस आद्य प्रकृति–पुरुष स्वरुप पर सांख्य दर्शन के प्रकृति–पुरुष की अवधारणा का प्रभाव है। 'पद्मपुराण' में श्रीकृष्ण और राधा के नरवशिख सौन्दर्य का वर्णन भी उपलब्ध है, जिसका विकास मध्यकालीन भक्त कवियों के काव्य में दिखायी देता है।

ब्रह्मपुराण में पूर्ववर्त्ती और तद्युगीन शक्तिवाद तथा भक्तिवाद के तत्त्वों का समावेश मिलता है। इसमें राधा सृष्टि का आधार है और कृष्ण अनश्वर बीजरुप हैं। ब्रह्मवैवर्त्तकार ने राधा को 'रसेश्वरी, रम्यरासोल्लास–रसोत्सुक, रासमण्डलमध्यस्थ, रसाधिष्ठान देवता', 'रसिकाप्रिया', 'रमा', रमणोत्सुका' और शरद्राजीव रात्रिप्रभामोचनलोचना जैसे श्रृंगारी और साहित्यिक विशेषणों से अलंकृत किया है।"[5]

चैतन्य महाप्रभु और निम्बार्काचार्य ने राधा के शक्तिरूप की विस्तृत व्याख्या की है। बल्लभाचार्य ने सच्चिदानन्द की आह्लदिनी पराशक्ति के रुप में राधा की चर्चा की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है (1) राधा आभीर जाति की प्रेम की देवी रही होगी, जिसका सम्बन्ध बालकृष्ण से रहा होगा।
(2) राधा इस देश की किसी आर्यपूर्व जाति की प्रेम की देवी रही होगी, बाद में इसकी प्रधानता हो गयी होगी और कृष्ण के साथ इसका सम्बन्ध भी जोड़ दिया गया होगा।"[6] इससे इतर डॉ0 शशिभूषण दास गुप्त का अनुमान है कि "राधावाद शक्तिवाद के विकास का परिणाम है।"[7]

भारतीय संस्कृति में राधा का विकास सांस्कृतिक विकास की अनेक धाराओं का सम्मिलित रूप है। अनेक विद्वान् राधा को अर्वाचीन और आर्येतर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, परन्तु भारतीय कथा में राधा का व्यक्तित्त्व कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, सभी को अनुप्राणित करता रहा। "राधा के व्यक्तित्व' के निर्माण में तथ्य और कल्पना, दार्शनिक चिन्तन और भावना, शास्त्रचिन्तन और लोकचेतना का योगदान रहा है। राधा के व्यक्तित्व में लोकमानस के रागतत्त्व की वास्तविकता और आकांक्षा की अभिव्यकित हुई है।"[8]

लेक मानस के राग तत्व का अभ्युदय राधा के रुप में नितान्त नैसर्गिक और प्रेमतत्त्व के निरूपण के रूप में हुआ। कवियों के लिए वह श्रृंगार का सिरमौर, भक्तों के भावलोक की अन्यतम उपलब्धि, दार्शनिकों के लिए आत्मानुशासित प्रज्ञा, चित्रकारों के लिए सजीव रसमूर्ति एवं संगीतकारों के लिए आत्मसंगीत की प्राण प्रतिष्ठा बनकर विकसित हुयी। सहजता, स्वाभाविकता, सुकुमारता, माधुर्य और निश्छलता की प्रतिमूर्ति 'राधा' वह लोकात्मा है जहाँ 'आनन्द' रसरूप में सदैव प्रकट होता है। इसीलिए भागवत्कार को लिखना पड़ा– **अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।**
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतोयामनदद्रहः।। भा0द0स्क0अ0 30, 28

*****